ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 **PP. No.- 209-210**
I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

स्त्री विमर्श की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों का वैशिष्ट्य

प्रो0 (डॉ0) कल्याण कुमार झा
विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार) भारत

Received-29.05.2025, Revised-10.06.2025, Accepted-16.06.2025 E-mail : kalyan.jhaa@gmail.com

सारांशः ***आज उपन्यास साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सशक्त विधा के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। संसार में कथा कहने और सुनने की परम्परा काफी प्राचीन है, किन्तु कथा का उपन्यास में परिणत होने का अनिवार्य शर्त उसका यथार्थ के प्रति आग्रह है। अतः उपन्यास का उदय यथार्थवादी चेतना की अभिव्यक्ति से जुड़ा है। अपने यथार्थ के प्रति आग्रह के कारण ही उपन्यास जीवन के अधिक करीब है। साहित्य की समस्त सर्जनात्मक विधाओं में उपन्यास समाज देशकाल तथा जीवन से जुड़ी अनेक समस्याओं के चित्रण में अधिक प्रभावशाली सिद्ध हो चुका है, इसका एक प्रमुख कारण इसका फैलाव है, जिससे यह जीवन की संश्लिष्टता और वैविध्य को उभारने में अधिक सक्षम है।***

कुंजीभूत शब्द– महिमामंडित, संतोषजनक, भोग्यामात्र, यज्ञोपवित्, चिरलांछित, चिरवंचिता, चिरवन्दिनी, देशकाल, संश्लिष्टता

परिचय– स्त्री प्राचीन समय से ही साहित्य–सर्जना के केन्द्र में रही है। यह अलग बात है कि कभी उसे महिमामंडित करके वर्णित किया गया, तो कभी उसे भोग्यामात्र समझकर जीवन की समस्त दुखों की जड़ कहकर व्याज्य बताया गया। वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति काफी संतोषजनक थी। उन्हें शिक्षा और यज्ञोपवित् का अधिकार प्राप्त था, ऋग्वेद में परदा प्रथा तथा सती–प्रथा का कोई उल्लेख नहीं मिलता है, साथ ही लोपामुद्रा, अपाला, धोषा, विश्वंभरा, विलोमी आदि अनेक विदूषि स्त्रियों का उल्लेख भी मिलता है। उत्तरवैदिक काल तक आते–आते स्त्रियों के सारे अधिकार छीनने लगे उसे मात्र भोग्या बनाकर पुरुष के अधीन कर दिया गया। और यहीं से शुरू हो गयी स्त्रियों की त्रासदी जो उत्तरोत्तर विकराल रूप धारण करती गई।

मुख्य भाग– जिस समय हिन्दी साहित्य में उपन्यास का एक विधा के रूप में अंकुरण हो रहा था उस समय तक स्त्री पराधीनता की बेड़ियों में पूरी तरह जकड़ दी गई थी, उसे मानवी की जगह वस्तु समझा जाने लगा था। साथ ही यह समय भारतीय इतिहास में देश की गुलामी, अशान्ति और सामाजिक संक्रांति का काल भी था जिससे समाज पतन की ओर बढ़ रहा था अतः इस समय जो उपन्यास लिखे गये वे या तो आदर्शवादी थे या मनोरंजन से पूर्ण। फिर भी स्त्री के शोषण पर उपन्यासों में यदा–कदा चर्चा हो ही जाती थी। प्रारम्भिक उपन्यासों में स्त्रियों के संबंध में जो चर्चाएँ आयी हैं उनका उद्देश्य स्त्री के महिमामंडित स्वरूप का चित्रण करना था। यहाँ इस सन्दर्भ में 'हरिऔध' के उपन्यास 'अधखिला फूल' के सारांश को देखा जा सकता हैः

''हरिऔधजी के दूसरे उपन्यास 'अधखिला फूल' में भी एक हिन्दू स्त्री के आदर्श रूप को प्रस्तुत करते हुए सामाजिक अंधविश्वासों की आलोचना की गई है। इसकी नायिका देवहूती एक विवाहित स्त्री है। उसका पति देवस्वरूप संसार की ओर से विरक्त हो कर कहीं चला जाता है। उसके पति की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर कामिनी मोहन अपने नाम के अनुरूप ही देवहूती को रिझाकर अपने वश में करना चाहता है। इसी के लिए वह एक षड्यंत्र रचता है। देवहूती के बीमार भाई के ठीक होने के लिए वह देवहूती को प्रतिदिन एक अधखिला फूल देवी पर एक महीने तक चढ़ाने का विधान बताता है। लेकिन देवहूती की चारित्रिक–दृढ़ता और पति में निष्ठा के कारण कामिनी मोहन अपने षड्यंत्र में सफल नहीं हो पाता है। बाद में, पति के लौट आने पर, पति–पत्नी समाज की सेवा करते हुए अपनी गृहस्थी में रमे रहते हैं।''[1]

हिन्दी की प्रत्येक विधा में प्रारम्भ से ही स्त्री को केन्द्र में रखा गया है, किन्तु प्रारम्भिक हिन्दी उपन्यासों में परम्परागत हिन्दू आदर्शों को स्वीकारते हुए पुरुष वर्चस्व को ही कायम किया गया है तथा स्त्री को पुरुष की दासी बनने में ही उसके महिमा का बखान किया गया है। यद्यपि थोड़ी–बहुत स्त्री शिक्षा की वकालत भी की गई, उसके त्रासदी बाल–विवाह, विधवा की स्थिति, सती प्रथा आदि क्रूर प्रथाओं की ओर भी समाज का ध्यान दिलाया गया किन्तु बहुत दबी जबान में। प्रारम्भिक उपन्यासों के सन्दर्भ में रामदरश मिश्र लिखते हैंः

''इन सारे सामाजिक उपन्यासों के विषयों की परीक्षा करें तो हम पायेंगे कि इनके सामने सबसे बड़ा विषय था नारी। वह हिन्दी समाज की चिरलांछित, चिरवंचिता, चिरवन्दिनी, नई दीप्ति के साथ हमारे सामने आई। उसकी समस्याएँ ही सारे देश की समस्याएँ थीं। बाल–विवाह, दोहाजू, आभूषणप्रियता आदि ये सब विषय सामाजिक उपन्यासकारों के मुख्य विषय रहे हैं। इन सब विषयों में नारी अत्यंत निकट से लिपटी हुई थी। ये ही नये विषय थे। नई शिक्षा ने नए बाबू और पुराने चाल की सहधर्मिणी की एक समस्या उपस्थित कर दी थी।''[2]

स्त्री विमर्श की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों का वैशिष्ट्य महत्वपूर्ण है। उपन्यास चूँकि आधुनिक काल की विधा है और आधुनिक काल तक आते–आते बुद्धिजीवी वर्ग स्त्रियों के प्रति सजग होने लगा था। उपन्यासों में उनके आरंभ काल से ही स्त्रियों की स्वतंत्रता को लेकर वकालत की जाने लगी थी, यद्यपि यह स्वर अत्यंत क्षीण ही था। गोपाल राय लिखते हैं–

''हिन्दी उपन्यास में विवाहपूर्व प्रेम का अंकन भी 'रहस्य– कथा' से ही आरम्भ होता है। यद्यपि साहित्य में विवाहपूर्व प्रेम का वर्णन कोई नयी चीज नहीं थी, पर जिस काल में यह उपन्यास लिखा गया था, उस काल में हिंदू–समाज में विवाहपूर्व प्रेम को सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। उपन्यास के शान्त, शिष्ट, सौम्य और सच्चरित कथानक तिलकधारी और 'शिक्षित', 'गुणवती', 'कारीगरी के कामों में कुशल', 'मातृविहीन' गुणवती का विवाहपूर्व प्रेम दिखाकर भट्टजी ने अपनी आधुनिक दृष्टि का परिचय दिया है। इनके प्रथम और दिनोंदिन गाढ़े होते 'प्रेम रस' के वर्णन में उपन्यासकार की संयत रसिकता देखने योग्य है। पर जैसा अक्सर प्राचीन प्रेम कथाओं में होता है, भट्टजी भी आकस्मिक घटनाओं की सहायता से नायक–नायिका में बिछोह करा देते हैं।''[3]

''इस घटना के पश्चात् 'अठारह वर्षीय' गुणवती का 'पचास वर्षीय' मानुभान सिंह के साथ 'बेमेल विवाह' दिखाकर उपन्यासकार ने 'पाखंड, अन्धविश्वास और रूढ़िवादिता से ग्रस्त समाज की बलिवेदी पर 'सुशीला गुणवती कन्या की बलि' चढ़ा देने का वर्णन किया है।''[4]

भारतेन्दु युग के उपन्यासों का वैशिष्ट्य यह है कि इनके माध्यम से उपन्यासकार स्त्री की सामाजिक स्थिति की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट करने लगे थे। किन्तु इस समय के उपन्यासकार सनातन हिंदू धर्म के आदर्शों से बंधे हुए उपन्यास लिखते थे।

I S S N NO. - 2347 – 2944 (Print)
e–I S S N NO.- 2582 – 2454 (Online)
Vol.-19, No.-II, Issues-36, YEAR-April-June. 2025

इसका कारण शायद 'स्त्री विमर्श' की प्रारम्भिक अवस्था ही थी। तत्कालीन परिवेश में 'स्त्री विमर्श' की दृष्टि से इन उपन्यासों के सन्दर्भ में मधुरेश लिखते हैं:

''भारतेन्दु–युगीन लेखक सनातक हिंदू आदर्शों के उत्साहपूर्ण समर्थन की झोंक में भारतीय समाज में पुरुष के वर्चस्व को ही महत्व दे रहे थे। स्त्री वहाँ पति की दासी थी– अपने कुल–शील और थोड़ी–बहुत शिक्षा से जिसे एक भली और आदर्श स्त्री बने रहकर पति की सेवा में ही अपने लोक–परलोक संवारने थे। यह मूलतः सामंती दृष्टि थी जो स्त्री की पराधीनता को ही उसके जीवन का सबसे बड़ा सत्य मानकर चलती थी।''[5]

किसी भी मनुष्य के शोषण एवं उत्पीड़न के पीछे उसकी अशिक्षा एक प्रमुख कारण होता है। जिस समय उपन्यासों का रचना आरम्भ हुआ उस समय भारत में स्त्री–अशिक्षा अपने चरम पर थी। तत्कालीन उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से प्रबुद्ध स्त्रियों के महत्व को दिखा कर लोगों का ध्यान स्त्री–शिक्षा की ओर आकृष्ट करना चाहा। 'नूतन ब्रह्मचारी' में बालकृष्ण भट्टजी भी प्रबुद्ध नारी की चर्चा करते हैं। विवेच्य काल के उपन्यासों के सन्दर्भ में प्रस्तुत उद्धरण द्रष्टव्य है–

''उपन्यास (नूतन ब्रह्मचारी) का नायक नाहर सिंह एक साहसी और चरित्रवान पुरुष तथा उसकी प्रेमिका इरम्भदा एक तेजस्विनी नारी है। इरम्भदा, भाग्यवती, निःसहाय हिन्दू, परीक्षा गुरु आदि की नायिकाओं की तरह एक प्रबुद्ध नारी है। आरम्भिक उपन्यासों में इस प्रकार की प्रबुद्ध नारियों का सृजन नारी के प्रति इन उपन्यास लेखकों के विश्वास का परिचायक है।''[6]

'स्त्री विमर्श' को उपन्यासों में स्थापित करने का श्रेय युग के कथाकार प्रेमचन्द को जाता है। प्रेमचन्द के रूप में अपने रूपान्तरण से पूर्व ही इन्होंने अपनी रचनाओं में 'स्त्री विमर्श' की शुरुआत कर दी थी। इन्होंने 'रूठी रानी' में ही बहुपत्नी जैसे सामंती प्रथा के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया जो तत्कालीन समय में एक उदाहरण ही था। इस सन्दर्भ में मधुरेश का कथन द्रष्टव्य है–

''प्रेमचंद' के रूप में अपने रूपान्तरण से पहले, 'रूठिरानी' में ही प्रेमचन्द इस सामन्ती–मूल्य दृष्टि पर गहरी चोट करते हैं। राजाओं और सामंतों के लिए, छोटे–बड़े रजवाड़ों में बहुविवाह कोई बुरी चीज नहीं मानी जाती थी। यह कहीं न कहीं उनके शौर्य और प्रतिष्ठा से जुड़ा सवाल था। जिसने राजाओं को हराया, उनकी बहनों–बेटियों से विवाह किया और हराये बिना भी किसी युवती कन्या को पसन्द आ जाने पर अपने हरम की शोभा बनाने में ही उनका पौरुष तृप्त होता था। पत्नी के साथ उसके मायके से आयी दासियों–बांदियों पर तो उसका स्वतः सिद्ध अधिकार था ही। फिर यदि उसका पति उसके साथ आयी बांदी के साथ रात बिताता तो इसमें ऐसा क्या है जिसके कारण रूढकर वह सारे जीवन उससे बात नहीं करेगी और न ही अपने शरीर पर पति के अधिकार को स्वीकारेगी?''[7]

निष्कर्ष–किसी विद्वान ने कहा है कि गुलाम को अगर गुलामी का एहसास करा दो तो वह स्वयं गुलामी से मुक्ति पा लेगा। हिन्दी उपन्यासों का 'स्त्री विमर्श' के सन्दर्भ में यही वैशिष्ट्य है कि इसने स्त्रियों को उसके दयनीय स्थिति से अवगत कराकर उनमें संघर्ष और विरोध करने की चेतना का संचार किया। जिसकी परिणति उनके स्थिति में सुधार के रूप में सामने आई।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0–21.
2. हिन्दी उपन्यास एक अन्तर्यात्रा, रामदरश मिश्र राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृ0 21.
3. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 41.
4. वही, पृ0 41.
5. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 1996, पृ0 32.
6. हिन्दी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005, पृ0 41.
7. हिन्दी उपन्यास का विकास, मधुरेश, सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995, पृ0 21.

*****